Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 19, Issue No. 1, January-2022, ISSN 2230-7540

भारतीय समाज के सन्दर्भ में सामाजिक न्याय की प्रासंगिकता

डॉ. सत्येन्द्र सिंह[1*], डॉ. विपिन कुमार[2]

[1] एसो॰ प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, जनता वैदिक कॉलिज, बड़ौत (बागपत)

[2] समाजशास्त्र विभाग, कॉलिज ऑफ एजुकेशन, बिलासपुर , गौतबुद्धनगर

सार - सामाजिक न्याय विश्व की श्रेष्ठ अवधारणा है जो बहुत व्यापक और बहुआयामी है। यह एक आदर्श स्थिति है जिसकी स्थापना, अनुभूति, निरन्तरता तथा व्यवहार आंशिक रूप ही सम्भव हो पायेंगे। यह व्यक्ति, परिवार समुदसक राष्टं और राज्य से सम्बन्धित है। जिस तरह पमाजिक न्याय की प्म्भावना हर क्षण हर जगह हो सकती है उसी तरह इसका निषेध और उल्लंघन हर क्षण हर जगह हो सकता है। इसका सीधा सम्बन्ध देश-काल की परिस्थिति मानव समाज, मानवीय मूल्य, प्रकार का स्वरूप और उनकी इच्छा शक्ति, संकल्प शक्ति से है। सामाजिक न्याय का सकारात्मक अथवा नकारात्मक बभाव विशेषकर निर्धन, अपेक्षित, पीड़ित, दलित, शोषित, असहाय, विकलांग एवं कमजोर वर्ग पर पड़ता है। अतः सामाजिक न्याय का क्षेत्र व्यापक और बहुआयामी है इसलिये बाथमिकताओं का चयन करना होगा।

----------X----------

परिचय

मानव स्वभाव में कुछ ऐसी भावनाएँ निहित हैं जिनसे नैतिकता, न्याय और सद्‌गुण के भाव संचारित होते हैं। इनसे सामाजिक सम्बन्ध के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति होती है। यही तथ्य हमें न्याय के समीप ले जाता है। न्याय का विचार, गम्भीर नैतिक धारणाओं के साथ प्रारम्भ हुआ। एक न्याय संगत समाज-व्यवस्था को दूषित माना गया। न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था को किस प्रकार स्थापित किया जाये और उसे कैसे सुरक्षित रखा जाये, इसकी अभिव्यक्ति दार्शनिक, नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक, विधिक और संवैधानिक सिद्धान्तों के माध्यम से समय-समय पर की गई है। सामाजिक न्याय की सैद्धान्तिक भूमिका सभी देशों में नये समाज के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सामाजिक न्याय व्यक्ति, सरकार और संस्थाओं की आन्तरिक और बाह्य शक्ति है जो एक न्याय संगत समाज-व्यवस्था स्थापित करने के लिये प्रेरित करती हैं। यह आंतरिक शक्ति मन में स्थित होती है और जब यह जाग्रत होती है तो व्यक्ति हिंसा, अन्याय और अत्याचार की ओर न जाकर सामाजिक न्याय की दिशा में अग्रसर होता है। बाह्य शक्ति सरकार और संस्थाओं को सामाजिक न्याय की दिशा में सुदृढ़ करती है। भारत सहित सभी देशें में सामाजिक न्याय संगठनों की स्थापना की गई ताकि गाँव व शहरों में गरीब व पीड़ित वर्ग कानूनी सहायता के लिये आगे आ सके। जहाँ सामाजिक न्याय नहीं होता वहाँ व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता, चिंतन, अभिव्यक्ति का अभाव होने लगता है। समाज निष्क्रिय, रूढ़िवादी होकर अंदर से टूटने लगता है, सरकार दमनकारी, अप्रजातांत्रिक, अनुदान बन जाती है और अन्य संस्थाएँ संकीर्ण-संकुचित हो जाती है। यह कल्याणकारी राज्य की सस्वीकृति है जिसमें राज्य की समस्त संस्थाओं से सामाजिक न्याय प्रकट होता है।

प्राचीन यूनान में प्लेटों ने सामाजिक न्याय व्यवस्था मानव प्रकृति के अनुरूप तीन वर्गों में विभक्त कर व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर बताई। इसमें भी कार्य विभाजन अहस्तक्षेप, संतुलन और सामंजस्य पर जोर दिया गया, प्रत्येक

www.ignited.in

व्यक्ति को वह देना जो उसका हक है सामाजिक न्याय माना गया। अरस्तु ने अपनी पुस्तक "पॉलिटिक्स" में लिखा है- "श्रेष्ठ राजनीतिक समुदाय वह है जिसमें नियंत्रण मध्यम वर्ग के हाथों में होता है", मध्यम वर्ग किसी अतिवादी विचार का अनुसरण नहीं करता। यह विवेक साहस, संयम और न्याय से काम करता है।

सामाजिक न्याय के दो महत्वपूर्ण पक्ष है- विकास और वितरण उदारवादी पूँजीवादी चिंतन में न्यायपूर्ण वितरण का आधार व्यक्ति की योग्यता माना जाता है, जिससे उसका और समाज का विकास होता है। समाजवादी चिंतन में वितरण पर अधिक जोर दिया जाता है उनके वितरण के आधार, समानता और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा है। नवीन उदारवादी और कल्याणकारी धारणा ने सामाजिक न्याय के विकास और वितरण के पक्षों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। सामाजिक न्याय को समझने के लिये न्याय की अवधारणा का अवलोकन करना आवश्यक है।

न्याय, शब्द के अनेक अर्थः प्राचीन कालीन रोमन और यूनानी विचारकों ने न्याय को नैतिक दायित्व और दार्शनिक सद्गुणों पर आधारित बताया। रोमन दार्शनिक सिसरों के अनुसार "न्याय एक आंतरिक स्वभाव है", पाइथोगोरस ने "न्याय को मनुष्यों के सद्गुण और सामंजस्य पर आधारित माना है। थ्रेसीमेकस के अनुसार, "न्याय शक्तिशाली का हित है" सुकरात ने इनके विचारों का विरोध किया। उन्होंने "न्याय को प्रजा और कमजोर के हितों से जोड़ने" का बुद्धिसंगत तर्क दिया। सुकरात के शिष्य प्लेटों ने न्याय को व्यापक रूप से परिभाषित किया। उसके अनुसार "न्याय आत्मा का सद्गुण और स्वभाव है। अरस्तु ने न्याय को विधिपरकता और निष्पक्षता के साथ जोड़ा। न्याय एक ऐसा सदुगण है जिसके द्वारा विधिक दायित्वों का निर्वाह किया जाता है। न्याय परम्परागत रूप से ऐसा विचार है जो एक संतुलन या समानुपात बनाये रखता है।

यदि सभी मनुष्य समान है तो वे एक ही सार-तत्व के हैं जो उन्हें समान मौलिक अधिकारों और समान स्वतन्त्रता का अधिकारी बनाता है। इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. अम्बेड़कर ने बताया कि "न्याय सामान्यतः स्वतन्त्रता, समानता और प्रभुत्व का दूसरा नाम है- न्याय को समानता के साथ बहुत अधिक जोड़ा जाता है। जो न्याय स्थापित करना चाहता है वह उन बातों को जो असमान है समान बनाने का प्रयास करता है।

वास्तव में न्याय की संरचना जटिल है। यह एक दोहरी प्रक्रिया है जो अपने मार्ग के अवरोधक तत्वों को समाप्त करती है तो दूसरी और अपने अस्तित्व को प्रभावी बनाने के लिऐ साधनों, मूल्यों एवं अधिकारों की स्थापना करती है। न्याय की अनिवार्यता मनुष्य समाज में स्वयं सिद्ध है, भले ही उसका स्वरूप कुछ भी हो। न्याय शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों से किया जाता है। किन्तु न्याय के विशेष अर्थ का सम्बन्ध राज्य द्वारा स्थापित न्यायालयों और उन माध्यमों से है जिनके निर्णय-वाद के पक्षों पर लागू हो और राज्य की शक्ति से क्रियान्वित किये जा सके।

भारतीय समाज के सन्दर्भ में न्याय: क्योंकि सामाजिक न्याय का सीधा सम्बन्ध समाज व्यवस्था और उसमें स्थित न्याय से होता है। अतः सामाजिक न्याय की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मानव समाज। विभिन्न युगों में सामाजिक न्याय का स्वरूप बदलता गया है।

प्राचीनकाल में विभिन्न देशों की सामाजिक न्याय की व्यवस्था उनकी परिस्थिति के अनुसार भिन्न थी। प्राचीन भारत में वैदिक धारणा के अनुसार सामाजिक न्याय को सामाजिक व्यवस्था के साथ जोड़ा गया। सांख्य दर्शन में भी मनष्य को त्रिगुण-सत्य, रज तथा तम की अभिव्यक्ति माना है। प्राचीन भारतीय समाज में प्रत्येक वर्ग के सदस्य के कत्तव्य निर्धारित किये गये। इस तरह सामाजिक न्याय में कत्तव्य निर्धारण, कत्तव्य विभाजन और सामंजस्य स्थापित किया गया। भगवद्गीता ने भी इस की पुष्टि की है।

प्रो. राधाकृष्णन ने भी इसे स्पष्ट किया और बताया कि वर्ण आधारित इन जातियों को एक दूसरे के साथ स्पर्धा न करके स्वधर्म के कार्यों को करना होता था। वर्ण के साथ चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य तथा सन्यास को भी जोड़ा गया ताकि विभिन्न अवस्था में व्यक्ति अपने सामाजिक कत्तव्यों का निर्वाह कर सके। प्राचीन भारत की इस सामाजिक न्याय व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति उनके वर्णो के पुरुषों के साथ जोड़ी गई किन्तु उन्हें गृह कार्य और बच्चों के पालन-पोषण का दायित्व दिया गया है। जहाँ तक विवाह का प्रश्न है, अनुलोम क्रम में वैवाहिक सम्बन्धों को न्यायसंगत माना गया और प्रतिलोम क्रम का

पूर्णतः विधि निषेध किया गया है। इन नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिये कठोर दण्ड व्यवस्था थी।

आधुनिक काल में नव चेतना का प्रारम्भ हुआ। भारत जैसे देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ स्वतन्त्रता, मानवतावाद, उदारवाद का प्रसार हुआ। आधुनिक युग के साथ सामाजिक न्याय की धारणा को नया सन्दर्भ और नया अर्थ मिला जिससे सामाजिक दृष्टिकोण बदलने लगे। सामाजिक न्याय को पाश्चात्य शिक्षा और ब्रिटिश शासन से बल मिला।

ब्रिटिश शासन ने सामाजिक न्याय के अभिकरणों के रूप में विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका स्थापित की। धर्म की भूमिका को पृष्ठभूमि में डाला गया और एक शक्तिशाली अभिकरण के रूप में राज्य सामने आया। भारतीय समाज में नवचेतना, बौद्धिक पुनजार्गरण, राष्ट्रवाद, शिक्षा, राजनैतिक चेतना के कारण सामाजिक मूल्य और मानवीय सम्बन्ध बदले। देश भक्ति और राष्ट्रवाद की लहर में वर्गीय भेदभाव भूलकर देश को स्वतन्त्र कराने के लिये आन्दोलन में सब एक सूत्र में बांध दिये गये। देश की स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक न्याय की स्थापना में बाधा नहीं रहेगी, यह आशा निम्न जाति और पिछड़े वर्ग को हो गई। इसीलिये 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही ये संविधान के निर्माण ‘‘न्याय-सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक’’ के लक्ष्य को सामने रखा गया।

सामाजिक न्याय के महत्वपूर्ण पक्षः

- सामाजिक न्याय वर्तमान समय का सर्वाधिक चर्चित शब्द है जिसकी सर्वमान्य परिभाषा का उल्लेख नहीं है। अतः यह माना जा सकता कि यह एक युग्म शब्द है जिसे सामाजिक और न्याय इन दो शब्दों से बनाया गया है।

- सामाजिक न्याय आदर्श राज्य की अवधारणा लिये हुए हैं जिसमें वर्तमान राज्य से बेहतर व्यवस्था की अपेक्षा की जाती है।

- सामाजिक न्याय लोक कल्याणकारी राज्य की सस्वीकृति है। यह समाज को निष्पक्ष रूप से व्यवस्थित करने का प्रयास है।

- समाज मुख्यतः स्वतन्त्रता, समानता और सुरक्षा पर आधारित है अतः राज्य का प्राथमिक एवं सर्वोच्च लक्ष्य इन तीनों की स्थापना का होना चाहिये।

- माक्र्सवादी समाजवाद में सामाजिक न्याय अपनी सर्वोच्च स्थिति साम्यवादी समाज में प्राप्त करता है जहाँ सामाजिक एवं आर्थिक असमानता पूर्णतः समाप्त हो जाती है।

- सामाजिक न्याय नैतिकवादी मानव मूल्यों पर आधारित है जिसमें प्रत्येक मनुष्य को मानव की गरिमा और सम्मान दिलाने की बात कही गई है।

- सामाजिक न्याय शक्तिहीनों पर हुये अन्याय को समाप्त करना है जो शक्ति सम्पन्न वर्ग के द्वारा किये जाते हैं इसलिये सामाजिक न्याय पूर्णतः स्थापित करना कठिन है क्योंकि शक्ति सम्पन्न वर्ग के ही हाथ में राज्य, कानून, दण्ड शक्ति आदि रहती है।

- सामाजिक न्याय का सकारात्मक कार्य है कमजोर वर्ग के लिये अनुकूल, उचित, न्यायपूर्ण अवसर का निर्माण करना।

- अधिक स्पष्ट शब्दों में सामाजिक न्याय से तात्पर्य है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति, को जीवन की मूलभूत अनिवार्य आवश्यकताओं-भोजन वस्त्र, मकान की पूर्ति हो, प्रत्येक व्यक्ति को विकास का समुचित सम्मानजनक अवसर मिले, व्यक्ति का व्यक्ति के द्वारा शोषण न हो एवं आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो।

- संविधान के भाग-**3** में वर्णित मौलिक अधिकारों का स्वरूप निषेधात्मक है जो सामाजिक न्याय के लिये राज्य शक्ति को सीमित करके व्यक्ति को समानता, स्वतन्त्रता सहित अन्य अधिकार देता है।

- भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर दसवीं पंचवर्षीय योजना के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये, विशेष रूप से कमजोर वर्ग के कल्याण एवं उत्थान से सम्बन्धित, अनेक विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया है।

- सामाजिक न्याय की ही दिशा में भारतीय संविधान में अनेक अनुच्छेदों के प्रावधान स्पष्ट रूप से नियुक्ति, शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश और लोकसभा, विधान

www.ignited.in

सभाओं में अनुचित जाति, जनजाति के लिये आरक्षण की व्यवस्था करते हैं।

यह बात स्पष्ट होती है कि न्याय संगत समाज की स्थापना के लिये संविधान कानून अधोसंरचना, अभिकरण, विभिन्न कार्यक्रम, भारी धनराशि, उपयुक्त योजना व नीतियों के निर्माण की आवश्यकता है। भारत में सामाजिक न्याय के लिये महिला सशक्तिकरण की नितान्त आवश्यकता है। सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिये न केवल साक्षरता की दरों में वृद्धि करना बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता पर भी ध्यान देना होगा। जनसंख्या वृद्धि की दर में अभी बहुत आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक अन्याय से पीड़ित वर्ग की ही जनसंख्या बहुत अधिक है। रोजगार के अवसर में वृद्धि करनी चाहिये। कृषि क्षेत्र में अधिक सन्मति और अवसर उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जितना ही सामाजिक न्याय व्यवहार रूप में दिखाई देगा उतना ही न्याय के सिद्धान्त का परिपालन सम्भव होगा क्योंकि दोनों धनात्मक सहसम्बन्ध है। न्याय की धारणा अमूर्त है जो सामाजिक सम्बन्धों का आधार है। इसकी अभिव्यक्ति सामाजिक न्याय में है। भारतीय संविधान में न्याय को महत्व देना अच्छा है लेकिन वास्तविक जीवन में सामाजिक न्याय को स्थापित करना कठिन है क्योंकि कानून ओर संविधान में लिखने के अलावा पूरक प्रावधानों और व्यवहारिक व्यवस्थाओं को स्थापित करना जरूरी होता है। सामाजिक न्याय के लिये सामाजिक-आर्थिक विकास के पर्यावरण का होना भी अनिवार्य है। भारत में इसके लिये विचार और आचार के बीच विसंगति को दूर करना बहुत आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सामाजिक न्याय संदेश-जनचेतना हिन्दी मासिक, डॉ अम्बेड़कर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, वर्ष-1, अंक-8, जुलाई 2003, पृ0सं0- 04
2. मैथ्यू, पी0डी0 (अनु0 भारद्वाज, चित्रा)- सामाजिक न्याय संगठन, भारतीय सामाजिक संस्थान नई दिल्ली, 1987, पृ0 सं0-04
3. जाटव, डी0आर0- सामाजिक न्याय का सिद्धान्त, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993, पृ0सं0-07
4. पूरणमल- मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर-2003, पृ0सं0-72
5. सेवाइन, जी0एच0-ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिक्ल थ्यौरी, 1973, पृ0सं0-65
6. धवन, हरिमोहन- "भारत का आर्थिक विकासः दशा और दिशा सन्दर्भ: सामाजिक न्याय, पूर्व सेवा सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, उज्जैन, वर्ष-11, अंक-43, अक्टूबर 05, 2006, पृ0सं0-03
7. विली, फ्रेंक- ए हिस्ट्र ऑफ फिलॉसफी, 1946, पृ0सं0-155
8. मेसनर, जे0-सोशल एथिक्स, 1973, पृ0सं0-23
9. डॉ बाबा साहब अम्बेड़कर-राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-3, 1969, पृ0सं0-25
10. भगवद्गीता, अध्याय-18, श्लोक-42, 43 एवं 44
11. डिक्शनरी ऑफ फिलॉसफी, पृ0सं0-228
12. जैन, महेन्द्र- भारत में सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास, पूर्व सेवा सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, मध्य प्रदेशः दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, उज्जैन, वर्ष-11, अंक-43, अक्टूबर 05, 2006, पृ0सं0-24

Corresponding Author

डॉ. सत्येन्द्र सिंह*

एसो॰ प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, जनता वैदिक कॉलिज, बड़ौत (बागपत)

Email: satyendra.jvc@gmail.com